शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-2.0
Vol.-2; issue-2 (July-Dec.) 2025
Page No- 343-349

©2025 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

1. वीणा द्विवेदी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिंदी-विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर.

2. प्रो. (डॉ.) सतीश कुमार राय
शोध-निर्देशक,
प्रोफेसर, बाबासाहेब भीमराव अंबेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर.

Corresponding Author :
वीणा द्विवेदी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिंदी-विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेदकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर.

अनामिका की काव्य-भाषा का अनुशीलन

शोध-सार : अनामिका अपने समय की एक सक्रिय, संवेदनशील एवं प्रबुद्ध कवयित्री हैं। उनकी कविताएँ अपने समय एवं समाज को दृष्टि में रखकर लिखी गई कविताएँ हैं। उनकी कविताएँ समाज से इतनी संपृक्त हैं कि जैसे-जैसे सामाजिक परिस्थितियाँ बदलती हैं, उनकी कविताओं में भी परिवर्तन स्पष्टतः लक्षित होता है। यही कारण है कि उनकी कविताएँ बाल-सुलभ चपलता से शुरु होती हैं और स्त्री-विमर्श की ओर उन्मुख हो जाती हैं।

यद्यपि उन्हें पैतृक विरासत में बहुत कुछ मिला, किन्तु उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में उनकी प्रतिभा का अहम स्थान है। वैसे तो कविता-रचना का सूत्रापात उन्होंने सन् 1980 के बहुत पहले कर दिया था, किन्तु काव्य-कादम्बिनी की मुख्यधारा में वे सन् 1980 के बाद आती हैं।

समय के साथ-साथ उनकी कविताओं के परिसर और आयाम में उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी हुई है। उनकी कविताओं में शब्दों का समायोजन विलक्षण है, जिसके कारण भाषा ही उनकी पहचान बन जाती है। उनकी संवेदना को शब्दों का मजबूत संबल मिल जाता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि अनामिका की काव्य-भाषा अनेक विशिष्टताओं के कारण समकालीन हिंदी कविता के परिदृश्य में अलग से उल्लेखनीय है। इस शोधालेख में हम उनकी इन्हीं विशिष्टताओं के विश्लेषण का प्रयास करेंगे।

बीज-शब्द : समकालीन, काव्य-भाषा, शैली, बिंब-विधान, अभिव्यक्ति की निजता, नॉस्टेल्जिया, नारीवादी लेखन, वज्जिकांचल।

मूल आलेख : एक श्रेष्ठ रचनाकार की पहचान उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दों पर ही निर्भर करती है। एक सशक्त भाषा के माध्यम से जो भाव व्यक्त होता है, वह विशिष्ट होता है। उदाहरण के लिए भिखारी एवं मजदूरनी पर तो बहुतेरी कविताएँ लिखी गईं, किन्तु जो प्रभाव निराला की 'भिक्षुक' तथा 'तोड़ती पत्थर' कविता का पड़ा वह अप्रतिम है। दहेज की समस्या पर तो बहुतों ने कहानियाँ लिखीं किन्तु जो बात आचार्य शिवपूजन सहाय द्वारा लिखित कहानी 'कहानी का प्लाट' में है, वह

अन्यत्रा दुर्लभ है।

भाषा ही उन्हें अन्य से अलग करती है। क्योंकि जब अभिव्यक्ति होगी तो अनुभूति होगी और अनुभूति होगी तो भावना भी होगी, भावना होगी तो भाषा भी होगी। अभिव्यक्ति की निजता बहुत कुछ भाषा पर निर्भर करती है। रामविलास शर्मा की मानें तो **भाषा के माध्यम से कवि के मस्तिष्क तक पहुँचना**[1] अर्थात् भाषा ही किसी रचनाकार की अभिव्यक्ति की निजता कहलाती है। अभिव्यक्ति को भाषा नया आयाम भी देती है, आकार भी देती है और सर्वग्राह्य भी बनाती है। जब भाषा में शक्ति होगी, तभी वह सर्वग्राह्य भी होगी।

जब हम अनामिका की भाषा पर दृष्टि डालते हैं तो हम पाते हैं कि उनके गद्य की भाषा तत्समबहुल है, किन्तु पद्य में अंचलपरक भाषा का प्रयोग अधिक है। उनके गद्य में प्रयुक्त भाषा का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-"हमारे हिंसा विह्वल, आतंकातुर समय की सबसे बड़ी त्रासदी है कि स्त्रियाँ तो ध्रुवस्वामिनी वाली कद-काठी पा गईं किन्तु पुरुष अभी राम गुप्त की मनोदशा में ही हैं, चन्द्रगुप्त नहीं हुए।"[2]

वहीं जब वे स्त्री-विमर्श की भाव-भूमि पर आधारित 'जच्चाघर की मोनकिया धाय उर्फ घोड़वावाली थेरिन: जन्नत के बाहर' नामक कविता में अपनी संवेदना व्यक्त करती हैं तो उनकी भाषा का कलेवर भदेसपन के साथ तद्भव, विदेशज एवं आंचलिक शब्दों की समाहार मालिका के रूप में सम्मुख उपस्थित होती है। उनकी भाषा एवं शैली अनूठे एवं एक नये स्वाद का आस्वादन कराती सी-जान पड़ती हैं, उदाहरणार्थ-

"तोस-भरोस दिया उसको/और कराई उसकी सोइरी!/काट डाली फिर नहरनी से नाल!/गोद धरती की हरी की,/हरी-भरी गोद पर निहुँच डाले/खील और बताशे/तारों के, फूलों के!/मन-भर सोहर गाये, इतराई!/मैं हव्वा की जाई!/जन्नत से मुझको/निकाला गया जिस दम-/उस दम ही एक नई दुनिया की तामील,/एक नई जन्नत बसाई!"[3]

'आम्रपाली' नामक कविता में वे लिखती हैं-

"अगल-बगल नहीं देखती,/चलती है सीधी-मानों खुद से बातें करती-/शरदकाल में जैसे/(कमंडल-वमंडल बनाने की खातिर)/पकने को छोड़ दी जाती है/लतर में ही लौकी-/पक रही है मेरी हर मांसपेशी,/खदर-बदर है मेरे भीतर का/हहाता हुआ सत!/सूखती टटाती हुई/हड्डियाँ मेरी/मरे कबूतर-जैसी/इधर-उधर फेंकी हुई मुझमें।"[4]

इसी क्रम की एक कविता 'गणिका गली' में प्रयुक्त भाषा कैसे उनकी मनःस्थिति व्यक्त करने में सहायक सिद्ध हुई है-

"अपभ्रंश का विरह-गीत दीखती हैं ये गणिकाएँ/ पुराने शहर के लालटेन बाजार में/लालटेन तो नहीं जलती पर/ये जलती हैं/लालटेन वाली/ धुंधली टिमक से।"[5]

उनकी भाषा भावों को सम्बल प्रदान करने में पूर्णतः सक्षम है। उनकी कविता की भाषा, शैली, घटनाएँ, दृष्टिकोण, बिम्ब-विधान, परिवेश तथा पात्रा कई अर्थ को व्याख्यायित करते हैं।

उनकी कविताओं में अँग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, हिन्दी, भोजपुरी तथा क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। वर्णनात्मक शैली में लिखी कविताएँ अपनी बिम्बधर्मिता में बेजोड़ एवं अप्रतिम हैं। उनकी भाषा उन्हें समकालीन कवियों में श्रेष्ठतम शिखर प्रदान करती है। 'भरोसा' शीर्षक कविता में भाषा-शिल्प का उदाहरण द्रष्टव्य है- "टुइयाँ-सी चीज है भरोसा! हमने उसे कहाँ-कहाँ नहीं ढूँढ़ा! दोस्तों की आँखों, भाई की पॉकेट, दादी के बटुए, बच्चों के गुल्लक से भी वह जाने कब और कैसे झड़ गया था।"[6]

'टुइयाँ-सी चीज है भरोसा!' सरीखी शब्दावली का प्रयोग अनामिका ही कर सकती हैं। टुइयाँ का प्रभाव इतना व्यापक है कि देर तक मष्तिष्क की नसों में झनझनाहट-सी प्रतीत होती है। सच ही तो कहा अनामिका ने-टुइयाँ-सी चीज ही तो है भरोसा! एक बार खो गई, फिर कहाँ मिलती है! मिल भी गई तो लेना कौन चाहता है! गई, तो फिर गई समझो। महत्त्वहीन हो जाती है।

उनका जुड़ाव गाँव से ही रहा है, भले ही वे शहर चली गईं। अतः उनकी कविताओं में आंचलिकता स्पष्टतः लक्षित की जा सकती है। कुछ

नॉस्टेल्जिया का प्रभाव, कुछ पीड़ितों एवं वंचितों की पीड़ा तथा कुछ मायके के प्रति जुड़ाव भी उनकी कविताओं में झलक जाता है। तभी तो वे मिथिलांचल तथा वज्जिकांचल की छोटी-बड़ी घटनाओं को, जो पूरी सभ्यता और संस्कृति को व्यक्त करती हैं, अपनी कविता का विषय बनाती हैं। तभी तो उन्होंने उत्तर बिहार, तिरहुत क्षेत्रा, मिथिला क्षेत्रा, वज्जिकांचल एवं मुज़फ्फरपुर तथा आस-पास की औरतों के जीवन, औरतों के परिवेश, पितृसत्ता की चक्की में पिस रही औरतों की पीड़ा तथा उनकी संघर्षमय अदम्य जिजीविषा एवं जिगीषायुक्त जीवन को बड़ी ही संजीदगी से उकेरा, सहेजा, निहारा तथा सराहा है। 'गणिका गली' नामक कविता में वे लिखती हैं- "सभ्यता से भी प्राचीन,/ये नदियों का तट थीं विस्तीर्ण-/चोर, नपुंसक, मूर्ख, संन्यासी, लम्पट, सामन्त-/इनके तट आते डूबती नौकाओं पर/और ये उन्हें उबार लेतीं।/अब इनके प्रेमी अधेड़, विस्थापित मज़ूर,/'इनसे तो पैसे भी नहीं माँगते बनता, ऐ हुज़ूर!/पर हमारी बच्चियाँ पढ़ रही हैं/विस्तृत क्षितिज पर ककहरे-'/ उन्होंने उमगकर कहा और खाँसने लगीं।/लेटी हुई छत निहारती।"[7]

यह क्या! अपना दुख बच्चियों की उन्मुक्त उड़ान को देख उड़न छू हो जाता है, यही तो है नारी-मन! संसार का सुख, स्त्री का सुख। किन्तु स्त्री का दुख संसार के समक्ष नगण्य।

प्रख्यात आलोचक डॉ. मैनेजर पांडेय के अनुसार- "भारतीय समाज एवं जनजीवन में जो घटित हो रहा है और घटित होने की प्रक्रिया में जो कुछ गुम हो रहा है, अनामिका की कविता में उसकी प्रभावी पहचान और अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।"[8]

अनामिका का दृष्टिकोण स्पष्ट है। वे विमर्श की ओर मुड़ीं और उनका विजन है-'उपेक्षित और प्रताड़ित स्त्री।' स्त्री कितनी सशक्त है, कितनी उपेक्षित है-उनकी रचनाओं में झक-झक दिखता है और दृष्टिकोण को आकार देता है बिम्ब-विधान। उनकी कविताओं में बिम्ब-योजना भी सशक्त है। 'यह मुजफ्फरपुर है सखियों' के अन्तर्गत रचित कविताओं में मुजफ्फरपुर की महिलाओं का वर्णन है। वहाँ की स्त्रियाँ समाज में भी रहती हैं, समाज से अलग भी रहती हैं। उनकी भी सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। 'वापसी' नामक कविता में वे लिखती हैं-"उन्होंने कहा-'हैंड्स अप'/एक-एक अंग फोड़कर मेरा/उन्होंने तलाशी ली!/मेरी तलाशी में क्या मिला उन्हें?/थोड़े-से सपने मिले और चाँद मिला-सिगरेट की पन्नी-भर,/माचिस भर उम्मीद/एक अधूरी चिट्ठी जो वे डीकोड नहीं कर पाए क्योंकि वह 'सिन्धु घाटी सभ्यता' के समय मैंने लिखी थी-/एक अभेद्य लिपि में/अपनी धरती को-/'हलो, धरती, कहीं चलो धरती!/ कोल्हू का बैल बने गोल-गोल घूमें हम कब तक?/आओ, अगिनबान-सा छूटें/ग्रहपथ से दूर!'/उन्होंने चिट्ठी मरोड़ी/और मुझे कोंच दिया कालकोठरी में/अपनी कलम से लगातार/खोद रही हूँ तब से/कालकोठरी में सुरंग।/एक तरफ से तो खुद भी गई है वो पूरी,/ध्यान से जरा झुककर देखो-/दीख रही है कि नहीं दीखती/पतली रोशनी/और एक खुली-खिली घाटी/वो कौन है?/कुहरे से घिरा?/क्या हबीब तनवीर-/बुंदेली लोकगीत छीलते-तराशते/तरकश में डालते।/नीचे कुछ बह भी रहा है।/क्या कोई छुपा हुआ सोता है!/सोते का पानी/हाथ बढ़ाने को उठता है,/और ताजा खुदी इस सुरंग के उस पार से/दौड़ी आती है हवा!/कैसी खुशनुमा कनकनी है-/घास की हर नोंक पर!"[9]

दिविक रमेश ने अनामिका की रचना के सन्दर्भ में लिखा है कि "अनामिका की बिंबधर्मिता पर पकड़ तो अच्छी है ही, दृश्यबंधों को सजीव करने की उनकी भाषा भी बेहद सशक्त है।"[10]

अनामिका 'चैका' नामक कविता में कहती हैं कि "जैसे मधुमक्खियाँ अपने पंखों की छाँह में/पकाती हैं शहद।/सारा शहर चुप है,/धुल चुके हैं सारे चैकों के बर्तन।/बुझ चुकी है आखिरी चूल्हे की राख भी,/और मैं/अपने ही वजूद की आँच के आगे/औचक हड़बड़ी में/खुद को ही सानती, खुद को ही गूँधती हुई बार-बार/खुश हूँ कि रोटी बेलती हूँ जैसे पृथ्वी।"[11]

उनके शब्द और बिम्ब स्त्रियों के संसार से आए हैं। उनका अपना संसार जिसमें सभी समाहित हैं। किन्तु स्त्री सबकी संगिनी होते हुए भी बिल्कुल अकेली है। उसके सुख-दुख उसके अपने हैं। स्त्री की

उन्हीं अनछुई अनुभूतियों को वाणी देने का कार्य किया है अनामिका ने। 'ओढ़नी' नामक कविता में वे कहती हैं कि "मैट्रिक के इम्तिहान के बाद सीखी थी दुल्हन ने फुलकारी!/दहेज की चादरों पर/माँ ने कढ़वाये थे/ तरह-तरह के बेल-बूटे, तकिए के खोलों पर 'गुडलक' कढ़वाया था!/कौन माँ नहीं जानती, जी, जरूरत/ दुनियाँ में 'गुडलक' की।/और उसके बाद?/ एक था राजा एक थी रानी और एक थी ओढ़नी-/और एक थी ओढ़नी-लाल ओढ़नी फूलदार/ और उसके बाद?/ एक था राजा एक थी रानी और एक खतम कहानी!/दुल्हन की कटी-फटी पेशानी और ओढ़नी खूनम-खून!/अपने वजूद की माटी से/धोती थी रोज इसे दुल्हन/और गोदी में बिछाकर सुखाती थी/सोचती-सी यह चुपचाप-/तार-तार इस ओढ़नी से/ क्या वह कभी पोंछ पाएगी/खूंखार चेहरों की खूंखारिता/और मैल दिलों का?/घर का न घाट का-/ उसका दुपट्टा/लहराता था आसमानों पर-/गगन में गैब निसान उड़े की धुन पर/आहिस्ता-आहिस्ता।"[12]

केदारनाथ सिंह ने अनामिका की रचनाधर्मिता के सन्दर्भ में उचित ही लिखा है कि "स्त्री रचनाकारों में खासतौर से नारीवादी लेखन में, इधर जो प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं, अनामिका का काव्य-व्यवहार उनसे थोड़ा अलग है... अपनी जानी-पहचानी दुनिया में उनकी दृष्टि प्रायः वहाँ टिकती है, जहाँ कोई टूट-फूट होती है या फिर सारी आपात समरसता के भीतर कोई फाँक या दरार, वे अक्सर संकेतों, रूपकों या लोक-अभिप्रायों से काम लेती हैं। इस तरह कविता का एक जटिल तंत्र विकसित होता है, जिसका संबंध रूप से कम और भाव तत्त्व की अंतर्वस्तु से अधिक होता है।"[13]

वे 'कमरधनियाँ' नामक कविता में रूपक के माध्यम से कैसे अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति देती हैं- "काम के बोझ से कमर टूटी जिनकी/उनकी भी होतीं कमरधनियाँ,/चाहे गिल्लट की होतीं, लेकिन होतीं!/ झन-झन-झन बजतीं वे/मिल-जुलकर मूसल चलाते हुए!"[14]

उनकी 'होमवर्क' शीर्षक कविता में कितनी कुशलता से आम जन की पीड़ा की अभिव्यक्ति का प्रयास है। उनकी पैनी दृष्टि से बच्चे का होमवर्क भी नहीं बच पाया। उनकी कविता रिक्त स्थान की पूर्ति करने की असफल कोशिश करती जिन्दगी की दास्तान-सी प्रतीत होती हैं, वे लिखती हैं-"'अब मैं थक गया माँ-/अगला होमवर्क तुम्हीं कर दो!/क्या जाने क्या-क्या/दे देती हैं मैडम-रिक्त स्थानों की पूर्ति करो!'/'रिक्त स्थानों की पूर्ति?/यह कैसे होती है, बेटा?/यह एक ऐसी कला है/जो मैंने कभी नहीं साधी!/जो जगह खाली हुई-खाली ही छोड़ दी!.../और ठीक से देखा जाये तो/फाँकों-दरारों और डैशों से/भरी हुई है सबकी जिन्दगी!'/'खाली जगहों में तो/भूत रहा करता है न, माँ?'/'कभी-कभी वर्तमान भी रहता है-/भूतों की पूरी भयावहता से, बेटू!'/'खाली जगहों में, माँ-/शब्द नहीं भरते-चलो, मोम भरते हैं।'/'आसमान पहले से ही भर गया है खाली जगहों में।/हम छोड़ दें, बेशक-/ आसमान कोई जगह छोड़ता नहीं खाली!'/ 'आसमान बन जाती हैं खाली जगहें, माँ?'/'खाली जगहों के ही दम से है, बेटे, इतना विशाल आसमान!/हम सबका खालीपन/ धीरे-धीरे मिट्टी से उठकर बन जाता है नीला आसमान!'"/[15]

वहीं 'ईश्वर के पी.ए.' शीर्षक कविता में आडम्बरों, अंधविश्वासों तथा मठाधीशों एवं धर्म के तथाकथित ठेकेदारों पर कटाक्ष करते हुए जब वे लिखती हैं तो पाठक को सोचने पर विवश कर देती हैं कि ईश्वर के पी.ए. के प्रभाव से हमारा चैथा स्तम्भ भी नहीं बच पाया। इस कविता के माध्यम से वे मीडिया के वीभत्स रूप को सामने लाने का प्रयास करती हैं- "अपने दुख मुझको ई-मेल करो,/एक बड़ा सम्मिलित आवेदन लेकर हम/जाएँगे ईश्वर के दफ्तर!"-उन्होंने कहा!/उन्हें घेर बैठ गए हम/आखिर वे ईश्वर के पी.ए. थे!/कितनी बातें पूछनी थीं हमें/उसके बारे में!.../ईश्वर के बारे में बतियाते/हम अपने दुख भूल जाते!/इस तरह/जहाँ-का-तहाँ रहता ईश्वर,/जहाँ-के-तहाँ रहते दुख सारे,/बदलते तो बस अपनी सीट हम बदल लेते/आगे-पीछे उस चटाई पर/और जारी रहता वो तमाशा प्राइम टाइम पर/-मुख्य समाचार बुलेटिन के पहले।"[16]

वहीं वे 'साँप-सीढ़ी' नामक कविता में

लिखती हैं कि "जिसे करने के लिए न काम हो,/न इंतजार,/प्यार, न प्रार्थना,/उसे अपनी चुप्पी से/खूब मन लगाकर/चाहिए खेलना साँप-सीढ़ी।/जाने के लिए जिसे घर हो न घाट,/ जहन्नुम, न जंगल।/उसे अपने भीतर ही/खेनी चाहिए/एक नाव।/लगाने को जिसे न आस हो,/न अड़ंगा,/बाँस,/न बबूल,/उसे अपने बीज/चुगा देने चाहिए/चिड़ियों को!"[17]

'तुलसी का झोला' नामक कविता में उस सत्य को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है, जो सार्वभौम है। रत्ना के माध्यम से समस्त स्त्री-जीवन का चित्रा उकेरा गया है। एक पुरुष चाहे कितनी भी गालियाँ दे, अपमानित करे, उपेक्षित करे किन्तु एक स्त्री इसे सहज भाव से स्वीकार कर लेती है। किन्तु स्त्री की एक छोटी-सी डाँट भी पुरुष के लिए असह्य है। कुछ दिन के लिए उसका मायके जाना भी पुरुष को स्वीकार्य नहीं। पुरुष एक झटके में सबकुछ छोड़कर चला जाता है। चाहे वे तुलसी हों या बुद्ध। समाज उन्हें महिमामण्डित भी करता है। 'घन-घमण्ड' नामक चैपाई को माध्यम बनाकर सुन्दर बिम्ब-योजना की गई है।

"मैं रत्ना-कहते थे मुझको रतन तुलसी/रतन-मगर गूदड़ सिला हुआ!/किसी-किसी तरह साँस लेती रही/अपने गूदड़ में/उजबुजाती-अकबकाती हुई!/ सदियों तक मैंने किया इन्तजार/आयेगा कोई, तोड़ेगा टाँके गूदड़ के,/ले जायेगा मुझको आके!/पर तुमने तो पा लिया था अब राम-रतन/इस रत्ना की याद आती क्यों?/'घन-घमण्ड' वाली चैपाई भी लिखते हुए/याद आयी?... नहीं आयी?/'घन-घमण्ड' वाली ही थी रात वह भी/जब मैं तुमसे झगड़ी थी!/कोई जाने या नहीं जाने, मैं जानती हूँ क्यों तुमने/'घमण्ड' की पटरी 'घन' से बैठाई!/नैहर बस घर ही नहीं होता,/होता है नैहर अगरघत्त अंगड़ाई,/एक निश्चिन्त उबासी, एक नन्ही-सी फुर्सत!/तुमने उस इत्ती-सी फुर्सत पर/बोल दिया धावा/तो मेरे हे रामबोला, बमभोला-मैंने तुम्हें डाँटा! डाँटा तो सुन लेते/जैसे सुना करती थी मैं तुम्हारी.../पर तुमने दिशा ही बदल दी!"[18]

कितनी मार्मिक बिम्ब-योजना के दर्शन यहाँ होते हैं-

"थोड़ी-सी फुर्सत चाही थी!/फुर्सत नमक ही है, चाहिए थोड़ी-सी,/तुमने तो सारा समुन्दर ही फुर्सत का/सर पर पटक डाला।/रोज फींचती हूँ मैं साड़ी/कितने पटके, कितनी रगड़-झगड़-/तार-तार होकर भी/वह मुझसे रहती है सटी हुई!/अलगनी से किसी आँधी में उड़ तो नहीं जाती!/कुछ देर को रूठ सकते थे, ये क्या कि छोड़ चले!/क्या सिर्फ गलियों-चैबारों में मिलते हैं/राम तुम्हारे?/ 'आराम' में भी तो एक 'राम' है कि नहीं-/'आराम' जो तुमको मेरी गोदी में मिलता था?/मेरी गोदी भी अयोध्या थी, थी काशी!/तुमने कोशिश तो की होती इस काशी-करवट की!/एक 'विनय पत्रिका' मेरी भी तो है/लिखी गयी थी वो समानान्तर/लेकिन बाँची नहीं गयी अब तलक!/... जब कुछ सखियों ने बताया-/चित्राकूट में तुम बैठे हो लगाते तिलक/हर आने-जाने वाले को-/मैंने सोचा, मैं हो आऊँ,/चैंका दूँ एकदम से सामने आकर!/पर एक नन्हा-सा डर भी/पल रहा था गर्भ में मेरे,/क्या होगा जो तुम पहचान नहीं पाये/भक्तों की भीड़-भाड़ में?/आईना कहता है, बदल गया है मेरा चेहरा,/उतर गया है मेरे चेहरे का सारा नमक/नमक से नमक धुल गया है (आँखों से चेहरे का!)"[19]

वहीं 'देह-वंशी' में निष्काम भक्तिभाव का सहज निरुपण उनके गहरे आध्यात्मिक बोध को दर्शाता है। उपमा एवं रूपक का सहज-सरल प्रयोग तथा उत्कृष्ट बिम्बात्मक भाषा कविता को ऊँचाई प्रदान करती है।

"चन्दन की सहज झुकी, मेहराबी डाल-सी ये बाँहें-तुम्हारी बाँहें-मेरी पातंजलि-/जो कभी सिर्फ बौराया-सा नाग होती हैं/और कभी सिर्फ-सिर्फ खुशबू-इनसे प्रार्थना है।/आँखें-जो मन्दिर के भग्न पट-सी/बन्द होकर भी नहीं ही बन्द हो पातीं-इन्हीं से प्रार्थना है।/होंठ जो मणिदीप हैं गहरी गुफा का,/देह-पत्थर काटकर छीना गया पथ/जहाँ मन की भीलनी जूड़ा सजाती है-/करौंदों से उलझती-सी बढ़ी जाती है अगम तक-/बस लहर-सी!/आज इनको ही समर्पित प्रार्थना हूँ मैं/कि अपने रोम-रन्ध्रों में मुझे निष्काम बजने दो-/सुबह की आरती की घण्टियों-सा/और अपनी इन नसों की तंग गलियों में/उमड़ते तीर्थंकों के भाल का रोली-सना-सा/स्वेदकण बन झिलमिलाने दो।/तुम्हारी

अगरबत्ती हूँ-बिना लौ के जली जाती-/अजानी किसी कोने में/कि शायद जज्ब कर पाओ कभी तो राख के भी पार की ये सहज घुँघराली/धुएँ की कुछ लकीरें-शंख-सी इस तलहथी की/ओस-भीगी अंजलि में!/समय का क्या है कि मेरे सारथी/समय ही कल कर्ण के रथ-सा रुकेगा/समय जो अब तक हमारे सजल वृन्दाओं में...''[20]

अनामिका के काव्य संसार के समग्र रुप से अवलोकन के उपरान्त मैंने पाया कि उनका दृष्टिकोण मुख्यतः स्त्री की सामाजिक स्थिति, उसकी संवेदना, उसके संघर्ष, उसकी जिजीविषा, उसके अदम्य साहस, उसकी सहनशीलता का बेबाक चित्राण करना है। 'नमक' नामक कविता के बहाने प्रस्तुत कर दिया स्त्री-जीवन की झाँकी या यूँ कह लें-'ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।'[21]

"नमक दुःख है धरती का/और उसका स्वाद भी/पृथ्वी का तीन भाग नमकीन पानी है/और आदमी का दिल/नमक का पहाड़/कमजोर है दिल नमक का/कितनी जल्दी पसीज जाता है!/गड़ जाता है शर्म से/जब फेंकी जाती हैं/थालियाँ दाल में नमक कम या जरा तेज होने पर/वो जो खड़े हैं न/सरकारी दफ्तर-शाही नमकदान हैं/बड़ी नफासत से छिड़क देते हैं हरदम हमारे जले पर नमक!/जिनके चेहरे पर नमक है/पूछिए उन औरतों से/कितना भारी पड़ता है उनको/उनके चेहरे का नमक/जिन्हें नमक की कीमत करनी होती है अदा-/उन नमक हलालों से/रंज रखता है महासागर/दुनिया में होने न दीं उन्होंने क्रांतियाँ,/रहम खा गए दुश्मनों पर/गाँधी जी जानते थे नमक की कीमत/और अमरूदों वाली मुनिया भी।/दुनिया में कुछ और रहे न रहे/रहेगा नमक-/ईश्वर के आँसू और आदमी का पसीना-/ये ही वो नमक है जिससे/थिराई रहेगी ये दुनिया।''[22]

यद्यपि एक पाठक वर्ग ऐसा भी है जो उनकी रचनाओं को खारिज करने का प्रयास भी करता है, किन्तु सूरज को कम आँकने से उसकी महत्ता कम नहीं हो जाती। अनामिका ने जिन पहलुओं पर अपनी लेखनी चलाई है, जिन चित्रों को उकेरा है, जिन बातों की ओर संकेत किया है, उनका महत्त्व, उनकी उपयोगिता समाज में है। वे समस्याएँ पहले भी थीं और आज भी हैं। उन पर चर्चा होनी चाहिए।

'अनब्याही औरतें' नामक कविता में अनामिका ने उन भावों को वाणी दी, जो हर कन्या के मन में उठते हैं, किन्तु वह किसी से कह नहीं पाती। यहाँ तक कि पुत्री की अन्तरंग संगिनी अपनी माँ से भी नहीं। बिन कहे रह जाती है वह। दबा लेती है मन को उद्वेलित करने वाले भाव को और एक स्त्री को कभी नहीं मिल पाता उसका मनमोहन। उसे जाना पड़ता है वहाँ, जहाँ उसे भेज दिया जाता है। कितनी सरलता से इतनी बडी बात को कह दिया है अनामिका ने।

"'माई री मैं कासे कहूँ पीर अपने जिया की माई री।'/जब भी सुनती हूँ मैं गीत, आपका मीरा बाई,/सोच में पड़ जाती हूँ वो क्या था/जो माँ से भी आपको कहते नहीं बनता था,/हालाँकि संबोधन गीतों का/अकसर वह होती थीं!/वर्किंग विमेन्स हॉस्टल में पिछवाड़े का ढाबा!/दस बरस का छोटू प्यालियाँ धोता-चमकाता/क्या सोचकर अपने उस खटारा टेप पर बार-बार ये ही वाला गीत आपका बजाता है!/लक्षण तो है उसमें/क्या वह भी मनमोहन पुरुष बनेगा,/किसी नन्ही-सी मीरा का मनचीता/अड़ियल नहीं, जरा मीठा!/वर्किंग विमेन्स हॉस्टल की हम सब औरतें/ढूँढ़ती ही रह गईं कोई ऐसा/जिन्हें देख मन में जगे प्रेम का हौसला!/लोग मिले पर कैसे-कैसे-/ज्ञानी नहीं, पंडिताऊ,/वफादार नहीं, दुमहिलाऊ,/साहसी नहीं, केवल झगड़ालू,/दृढ़ प्रतिज्ञ कहाँ, सिर्फ जिद्दी,/प्रभावी नहीं, सिर्फ हावी,/दोस्त नहीं, मालिक,/सामाजिक नहीं, सिर्फ एकांत भीरु/धार्मिक नहीं, केवल कट्टर/कटकटाकर हरदम पड़ते रहे वे/अपने प्रतिपक्षियों पर-/प्रतिपक्षी जो आखिर पक्षी ही थे,/उनसे ही थे/उनके नुचे हुए पंख/और चोंच घायल!/ऐसों से क्या खाकर हम करते हैं प्यार!/सो अपनी वरमाला/अपनी ही चोटी में गूँथी/और कहा खुद से-/ 'एकोऽहम् बहुस्याम्'/वो देखो वो-/प्याले धोता नन्हा घनश्याम!/आत्मा की कोख भी एक होती है, है न!/तो धारण करते हैं/इस नई सृष्टि की हम कल्पना/जहाँ ज्ञान संज्ञान भी हुआ करे,/साहस सद्भावना!''[23]

यही विशेषता है अनामिका की, जो उन्हें आम से खास बनाता है और उन्हें समकालीन कवियों में विशिष्ट स्थान एवं अलग पहचान दिलाता है।

संदर्भ-सूची :

1. रामविलास शर्मा, 'भाषा और समाज', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002.
2. अनामिका, स्वाधीनता का स्त्री-पक्ष, प्रथम संस्करण-2012 ई., राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002.
3. जच्चाघर की मोनकिया धाय उर्फ घोड़वावाली थेरिन: जन्नत के बाहर, टोकरी में दिगन्त, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-2021, पृष्ठ-68 .
4. 'आम्रपाली', 'टोकरी में दिगन्त', पृष्ठ-15.
5. 'गणिका गली', 'टोकरी में दिगन्त', पृष्ठ-81.
6. 'भरोसा', 'खुरदुरी हथेलियाँ', राधाकृष्ण प्रकाशन, पहला संस्करण: 2005 ई., पृष्ठ-141.
7. 'गणिका गली', 'टोकरी में दिगन्त', पृष्ठ-80.
8. डॉ.. मैनेजर पाण्डेय, bharatdiscovery.org.
9. 'वापसी', 'टोकरी में दिगन्त', पृष्ठ-66-67.
10. दिविक रमेश, bharatdiscovery.org.
11. चैका, अनुष्टुप, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण-2019 ई., पृष्ठ-47.
12. ओढ़नी, कविता कोश (अन्तर्जाल).
13. 'अनुष्टुप' के फ्लैप से, केदारनाथ सिंह का वक्तव्य, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2019 ई.
14. कमरधनियाँ, पानी को सब याद था, राजकमल पेपरबैक्स, पहला संरकरण-2019, पृष्ठ-9.
15. 'होमवर्क', 'अनुष्टुप', पृष्ठ-80-81.
16. 'ईश्वर के पी.ए.', 'पानी को सब याद था', पृष्ठ-75-76.
17. 'साँप-सीढ़ी,' 'बीजाक्षर', भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1993 ई., पृष्ठ-17.
18. 'तुलसी का झोला', 'दूब-धान', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2019 ई., पृष्ठ-20.
19. 'तुलसी का झोला', 'दूब-धान', पृष्ठ-21.
20. 'देह-वंशी', 'समय के शहर में', वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2019 ई., पृष्ठ-105.
21. कबीरदास, 'कबीर ग्रन्थावली', हजारीप्रसाद द्विवेदी.
22. 'नमक', 'टोकरी में दिगन्त', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्रकाशन वर्ष-2021, पृष्ठ-164-165.
23. 'अनब्याही औरतें', 'वर्किंग विमेन्स हॉस्टल, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2022.

•